पढ़ने से जूझते बच्चे

कमलेश चन्द्र जोशी

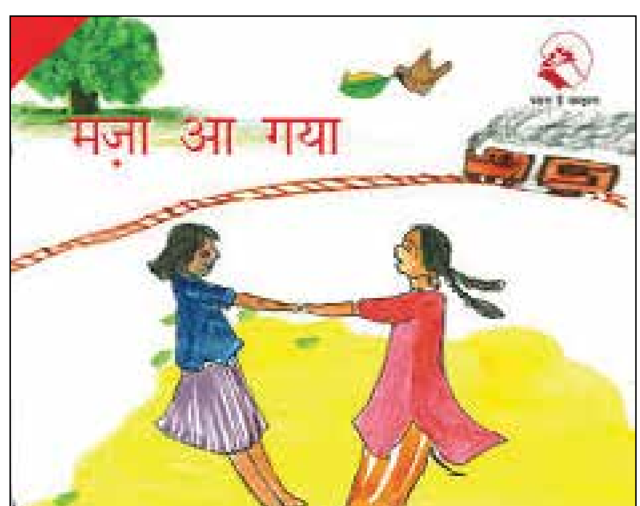
विद्यालय में 'पढ़ना-सीखना' हर विषय को सीखने की बुनियाद माना जाता है। अकसर यह देखा जाता है कि कुछ बच्चे उच्च प्राथमिक कक्षाओं में पहुँच जाते हैं पर पढ़ने का कौशल हासिल नहीं कर पाते और परिणामस्वरूप अपनी कक्षा में पिछड़ जाते हैं। विभिन्न विद्यालयों में भ्रमण के दौरान अकसर शिक्षकों की तरफ़ से यह बात उभरकर आती है कि इन बच्चों को पढ़ना नहीं आता, "बताइए, क्या करें?" शिक्षक साथियों के मन में यह रहता है कि कुछ ऐसी तरक़ीब हाथ लग जाए जिससे बच्चों को जल्दी से पढ़ना आ जाए। वास्तव में यह काम एक सुविचारित योजना, समय और निरन्तर प्रयासों की माँग करता है।

इसी सन्दर्भ में विगत वर्ष हमें एक उच्च प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने से जूझते बच्चों के एक समूह के साथ कार्य में शिक्षकों को सहयोग करने का अवसर मिला। इस समूह में कई ऐसे बच्चे थे जो छठवीं–सातवीं कक्षा में पहुँच गए थे, मगर पढ़ने के बुनियादी पहलुओं से ही जूझ रहे थे। उनमें से दो बच्चे काफ़ी पिछड़े हुए थे। उन्हें अक्षर और मात्राओं की ही पहचान नहीं थी। उनमें एक बच्ची थी जो कुछ बोलती ही नहीं थी, न ही नियमित रूप से विद्यालय आती थी। वह केवल पाठ्यपुस्तक से किसी पाठ को कॉपी करती थी और उसी को पढ़ना या स्कूल कार्य मानती थी। लेकिन वह किताब से शब्दों को नहीं पढ़ पाती थी और न ही उसे वर्ण और मात्राओं की अच्छे-से पहचान थी। दूसरा बच्चा केवल अपना और परिवार के सदस्यों का नाम पहचानता था, उसे भी वर्ण और मात्राओं की पहचान ही नहीं थी। इस बच्चे के साथ दिक़्क़त यह भी थी कि जो कुछ भी पढ़ाया-सिखाया जाता उसे वह अगले दिन भूल जाता था। इस प्रकार यह दोनों बच्चे पढ़ने से काफ़ी जूझ रहे थे। बाक़ी बच्चे कुछ अलग-अलग स्तरों पर थे।

हमने इन बच्चों के साथ काम करने के लिए एक समग्र योजना बनाई। यह तय किया गया कि बच्चे वर्ण और मात्रा सीखने के साथ-साथ बाल-साहित्य की कुछ छोटी पुस्तकों से भी रूबरू हों जो उन्हें पढ़कर सुनाई जाएँ और उनपर बातचीत भी हो। यह पुस्तकें शब्दों, वर्णों और मात्राओं की पहचान के अभ्यास के लिए भी उपयोग की जाएँगी। इसके लिए हमें एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित बरखा सीरीज़ की किताबें और इसी तरह का अन्य बाल-साहित्य उपयोगी लगा, क्योंकि यह बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभवों से जुड़ा हुआ था। यह किताबें बच्चों को पढ़कर सुनाई जातीं और इनपर बच्चों से बात भी होती जिसमें वे अपने अनुभव जोड़ते। कहानियों, कविताओं को ब्लैकबोर्ड पर लिखा जाता और बच्चों से पढ़वाया जाता। इसी से शब्द पहचान व मात्रा पहचान के अभ्यास भी किए गए। जिन शब्दों को वे पहचान सकते थे, उन्हें उनसे मिलते-जुलते ध्वन्यात्मक शब्द बनाने को कहा गया, जैसे कि 'रोटी' से 'चोटी' और 'मोटी'। इसके साथ ही उन्हें वाक्य बनाने, अपने अनुभव और सोचकर या जो वे लिखना चाहते हैं उसे लिखने के लिए भी कहा गया।

इस प्रक्रिया में बच्चों को शब्दों और मात्राओं को सीखने में थोड़ा समय तो लगा परन्तु अब उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया





है। अब वे अगले स्तर पर हैं। उम्मीद है कि वे कुछ समय बाद प्रवाह के साथ पढ़ना सीख जाएँगे। इसी तरह इस समूह के अन्य बच्चे भी जो अभी धीरे–धीरे व अटक–अटककर पढ़ते हैं, वे बाल-साहित्य की मदद से पढ़ना सीख जाएँगे और उनके पढ़ने की गति में भी सुधार होगा। इसके साथ वे लिखने के अभ्यास भी कर रहे हैं। अब लग रहा है कि यह सभी बच्चे कक्षा की मुख्यधारा में आ जाएँगे और अन्य विषय भी सीख पाएँगे।

पढ़ने से जूझते इन बच्चों के साथ काम करते हुए यह समझ में आया कि हमारी शैक्षिक व्यवस्था में बहुत-से इस तरह के बच्चे हैं जो पढ़ने–लिखने में पिछड़े हुए हैं और इस कारण शिक्षा की मुख्यधारा से बाहर हो जाते हैं। हालाँकि विभिन्न विद्यालयों में शिक्षक ऐसे बच्चों की पहचान करने में समर्थ हैं जो पढ़ने से जूझते हैं, पर वे उनके लिए सुव्यवस्थित हस्तक्षेप की योजना बनाने में असमर्थ हैं इस कारण समस्या वहीं रह जाती है। यह ज़रूरी है कि इस तरह के बच्चों के लिए एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर काम हो। इसके लिए प्रांसगिक स्रोत सामग्री की बहुत ज़रूरत पड़ती है जिसमें बच्चे अपने अनुभव जोड़ सकें। तब यह सामग्री शब्दों और वर्णों की पहचान करना सीखने के लिए भी उपयोग की जा सकती है। हस्तक्षेप की इस योजना में विद्यार्थियों को पढ़ना सीखने के सार्थक अनुभव देना ज़रूरी है। अगर इस तरह कार्य करेंगे तो हर बच्चा पढ़ना सीख पाएगा और ज्ञान की व्यापक दुनिया में शामिल हो पाएगा।



कमलेश चन्द्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। शिक्षा से जुड़े विभिन्न मुद्दों जैसे कि प्रारम्भिक साक्षरता, शिक्षक-शिक्षा व बाल-साहित्य में उनकी गहरी रुचि है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी ज़िला संस्थान, ऊधम सिंह नगर, उत्तराखण्ड में कार्यरत हैं। उनसे kamlesh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

जब कोई बच्चा स्कूल की दहलीज़ पार करता है तो वह अपने साथ न केवल अपना बस्ता, स्लेट व चॉक, किताबें और नोटबुक लेकर आता है, बल्कि अपनी पूरी सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी साथ लाता है : उसका भरा हुआ या ख़ाली पेट, उसकी जिज्ञासाएँ, उसके डर, संकोच, मातृभाषा और अन्य पहलू भी उसके साथ चले आते हैं। और अगर यह बच्चा एक ऐसे परिवार से आता है जिसका शिक्षा की संरचना के साथ पहले कोई सम्बन्ध नहीं रहा है तो स्कूल और शिक्षकों के लिए ज़रूरी हो जाता है कि वे और भी अधिक लचीले बनें।

- अनन्त गंगोला, एक सम्भावित सुन्दर चित्र, पेज 3